इकाई 12 जाति और राजनीति*

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 जाति एवं राजनीतिः क्षेत्र

12.3 जाति आधारित राजनीति के मुद्देः उदाहरण

12.3.1 आरक्षण

12.3.2 हिंसा

12.3.3 जाति प्रतीक और राजनीति

12.4 जाति और चुनावी राजनीति

12.5 सारांश

12.6 संदर्भ

12.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

12.0 उद्देश्य

आपने इकाई संख्या 11 में जातिवादी संगठनों और जातिगत गठनों के बारे में पढ़ा होगा। इस इकाई में आप जाति एवं राजनीति के संबंधों के बारे में पढ़ोंगे कि किस तरह ये चुनावी और गैर चुनावी राजनीति में एक-दूसरे से आपस में मेल जोल रखती है। इस इकाई के अध्ययनों के पश्चात् आप यह समझ सकेंगे :

- जाति और राजनीति के क्षेत्र को समझना;
- चुनावी राजनीति में जाति की भूमिका की व्याख्या करना; तथा
- जाति और लोकतंत्र के बीच संबंध स्थापित करना।

12.1 प्रस्तावना

जाति राजनीति में निर्णायक भूमिका निभाती है। इसका प्रमाण कई प्रकार के अध्ययनों में भी मिलता है जो भारत में जाति एवं राजनीति के बीच संबंधों पर किये गये है। राजनीतिक दल एवं जातिवादी संगठन लोगों को जाति के नाम पर एकत्रित करते हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद, भारतीय राजनीति में कई महत्वपूर्ण बदलाव देखने को मिले हैं। परिवर्तनों ने भारत में राजनीति एवं जाति के चरित्र पर प्रभाव डाला है। जाति की भूमिका काफी विस्तृत हुई है इसकी परंपरागत भूमिका बदल गई है। जाति के चरित्र में परिवर्तन राज्य की नीतियों के कारण हुआ है इनमें भूमि सुधार कल्याणकारी नीतियाँ, सार्वजनिक संस्थाओं में आरक्षण एवं ढ़ाँचागत विकास जैसी नीतियाँ शामिल है। विगत कई वर्षों से भारतीय राजनीति में दलितों एवं अन्य पिछड़े वर्गों की उपस्थिती महत्वपूर्ण रही है। यह स्वतंत्रता के प्रांराभिक वर्षों से भिन्न है जब केवल अन्य जाति और प्रभावी मध्य जाति जातियों का ही देश की राजनीति में प्रभुत्व था। जाति और राजनीति के बीच संबंध है। इस संबंध में न केवल राजनीति जाति को प्रभावित करता है। बल्कि, जाति भी राजनीति पर असर डालती है।

*डॉ. दिव्या रानी, कंसलटेंट, राजनीति विज्ञान संकाय, इग्नू, नई दिल्ली

राजनीति में जाति के महत्व का इस तथ्य से पता चलता है कि देश के अनेक राज्यों में कई राजनीतिक दलों की पहचान जातियों से है। चूंकि आपने इकाई संख्या 11 में जाति संगठनों की भूमिका का अध्ययन किया है, इसलिये यह इकाई आमतौर पर जाति समूहों के लाभबंद में राजनीतिक दलों की भूमिका पर ध्यान केंद्रित करेगी।

12.2 जाति और राजनीतिः क्षेत्र

जाति और राजनीति का दायरा विभिन्न जातियों और संस्थानों से संबंधित विभिन्न मुद्दों को शामिल करता है। इन संस्थानों में जाति संगठन एवं राजनीतिक दल भी शामिल हैं। जातिय राजनीतिक के मुख्य मुद्दे हैं, जातियों के अधीन रहने और प्रभुत्व के संबंध, जाति, धर्म आधारित हिंसा, नौकरियों के लिये सार्वजनिक संस्थाओं में आरक्षण, सामाजिक और सांस्कृतिक मान्यता, आत्मसमान, मानवाधिकार, सामाजिक न्याय आदि। जातियों में प्रतिस्पर्धा वास्तम में राजनीतिक दलों में प्रतिस्पर्धा और राजनैतिक संघर्ष तथा सत्ता प्राप्त करने के लिये जातियों के बीच प्रतिस्पर्धा का रूप धारण कर लेती है। राजनीतिक दलों के द्वारा चुनाव जीतने के लिये जातियों को एकजुट करने की राजनीति की जाती है। संस्थाओं की नीतियों में प्रतिनिधियों के माध्यम से अधिकार का हिस्सा जातियों के सशक्तिकरण का कारण हो सकता है, खासकर विधान सभा और लोक सभा या स्थानीय संस्थाओं में। जातियों का सशक्तिकरण उनके लिये बनाई गयी कल्याणकारी नीतियों के माध्यम से भी हो सकता है। इस प्रकार राजनीति और जाति के बीच संबंध जातियों के सांझे होने से होता है। मोटे तौर पर जाति और राजनीति के क्षेत्र में निर्वाचक और गैर चुनावी राजनीति में विभिन्न राजनीतिक दलों द्वारा जातियों को लामबंद करना शामिल है। जैसा कि ज्ञात है भारत पर राजनीतिक ढ़ाँचा संघीय है। जहाँ पर जाति और राजनीति के बीच का संबंध विभिन्न स्तरों पर देखा जाता है। विशेषकर स्थानीय संस्थाओं, विधान सभा एवं लोकसभा के स्तर पर।

12.3 जाति राजनीति के मुद्देः उदाहरण

इस खंड में आप जाति एवं राजनीति से संबंधित कुछ महत्वपूर्ण उदाहरणों के बारे में अध्ययन करेंगे। ये मुद्दे हैंः- आरक्षण, जाति-आधारित हिंसा, एवं अन्य मुद्दे जैसे - सांस्कृतिक एवं वितरित न्याय।

12.3.1 आरक्षण

इकाई संख्या 13 में, आप आरक्षण के प्रावधानों के बारे में अध्ययन करेंगे। आरक्षण एक प्रकार का सहारा है जो कि सरकारी नौकरियों में कमजोर वर्गों को दिया जाता है ताकि सभी प्रकार के संस्थानों में उनका प्रतिनिधित्व भी हो सके। इन कमजोर वर्गों में एस.सी., एस.टी., ओ.बी.सी., एवं महिलाऐं तथा अन्य आर्थिक रूप से पिछड़े वर्ग शामिल है।

यह इकाई आरक्षण के राजनैतिक आयाम पर केंद्रित होगी। केवल जाति के कई हाषिये पर आधारित समूहों में से एक भारत में अनुसूचित जाति और अन्य पिछड़ें वर्गों से संबंधित जाति समूह को सार्वजनिक संस्थानों में आरक्षण का हकदार बनाया गया है। अनुसूचित जाति को शिक्षा संस्थाओं में प्रवेश, विद्यार्थी निकायों और स्थानीय प्रशासन में तथा अन्य पिछड़े वर्गों को शिक्षा संस्थानों में प्रवेश और पंचायतों एवं नगरपालिकाओं में भी आरक्षण का प्रावधान किया गया है। आरक्षण का मुद्दा जाति की राजनीति से जुड़ा है। जो जातियां आरक्षण से अपवर्जित है वे या तो आरक्षण की माँग करती हैं, या आरक्षण के लिये हकदार वर्ग की कुछ

जातियों को आरक्षण से बाहर रखने की माँग करती है। आरक्षण के लिये हकदार जातियां आरक्षण के लिये, प्रावधान बनाये रखना चाहती हैं। अनुसूचित जाति और अन्य पिछड़े वर्गों जैसे विभिन्न जातियों में सामाजिक, शैक्षिक और आर्थिक उपलब्धियों के विभिन्न स्तर है, इसलिये उनमें से कुछ जातियों का मानना है कि उन्होंने आरक्षण की नीतियों से लाभ नहीं उठाया है। उनका तर्क है कि आरक्षण का लाभ उन्हीं लोगों को मिला है जो समाज के अभिजात्य वर्ग से हैं। उदाहरण के लिये उत्तर प्रदेश में अति पिछड़ा वर्ग यह माँग कर रहा है कि आरक्षण के कोटे को उप-विभाजित किया जाना चाहिये ताकि आरक्षण का लाभ उन्हें भी मिल सके। अन्य वर्गों में उसकी तुलना में इस वर्ग का बहुत कम हिस्सा आरक्षण का लाभ उठाता है। इस संदर्भ में, कुछ हिंदी राज्यों के अति पिछड़े वर्ग ने कयूरी ठाकुर फार्मूले के आधार पर कोटे के उप-विभाजन की माँग की है। जैसा कि आप इकाई 13 में पढ़ेंगे, इस फार्मूला का नाम बिहार के मुख्यमंत्री कर्पूरी ठाकुर के नाम पर रखा गया है, जिन्होंने ओ. बी.सी. कोटे को उप-विभाजित किया था ताकि आरक्षण का लाभ अति पिछड़े वर्गों को भी मिल सके। यहाँ तक कि कृषक समुदाय जैसा कि जाट ने राजस्थान में एवं हरियाणा में, महाराष्ट्र में मराठा एवं गुजरात में पटेल समुदाय ने पिछड़े वर्ग में शामिल करने के लिये आंदोलन चलाया था। राजस्थान में जाटों के आंदोलन के चलते, दिल्ली एवं यू.पी. की बी. जे.पी. सरकार, तथा राजस्थान की काँग्रेस सरकार ने जाटों को अन्य पिछड़ा वर्ग सूची में अपने-अपने राज्यों में शामिल कर लिया था। आरक्षण से संबंधित दोनों समूह चाहे पक्ष हो या विपक्ष दोनों ने अपने-अपने तर्क प्रस्तुत किये थे। जहाँ तक विपक्ष का सवाल है उनका तर्क यह था कि आरक्षण का आधार केवल मेरिट एवं आर्थिक स्थिति होनी चाहिये। इसका आधार जाति नहीं होना चाहिए। क्योंकि इससे मेरिट एवं कुषलता प्रभावित होती है। कहीं-कहीं पर यह तर्क राजनीतिक राजनीतिक कारणों से दिया जाता है। वहीं दूसरी ओर आरक्षण के समर्थकों का मानना है कि समाज में अभी भी जातिगत भेदभाव कायम है और मेरिट का आधार सामाजिक असमानता है और पिछड़े वर्ग आर्थिक एवं सामाजिक रूप से काफी कमजोर भी हैं, इसलिये इन समुदायों के लिये संविधान में आरक्षण का प्रावधान दिया गया है। इनकी सामाजिक स्थिति में सुधार से ये वर्ग आगे की श्रेणी में आ सकते है। इसलिए सांविधानिक तौर पर इन्हें अन्य पिछड़ा वर्ग का लाभ मिलना चाहिये।

आरक्षण के समर्थकों और विरोधियों के बीच कई बार मतभेदों ने आपसी टकराव एवं आंदोलन पैदा किये। ये आंदोलन प्रायः जनता के समर्थन, विरोध या सार्वजनिक संपत्ति के विनाष के बीच हुए झगड़ों से उग्र रूप धारण कर लेते हैं। इसके कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं। 1990 में मंडल आयोग की रिपोर्ट के कार्यान्वयन के विरूद्ध आंदोलन जिसने केन्द्रिय सरकार के संस्थानों में नौकरियों में अन्य पिछड़े वर्गों के आरक्षण देने का सुझाव दिया था। 1981 और 1985 में गुजरात में तथा 1970 के दशक में बिहार में आरक्षण विरोधी आंदोलन विवादास्पद मुद्दा बन गया था। मंडल आयोग की रिपोर्ट के विरोध में हुए आंदोलन ने उत्तर भारत के अनेक राज्यों, विशेषकर दिल्ली, उत्तर-प्रदेश, राजस्थान और बिहार को प्रभावित किया। इस आंदोलन में दिल्ली विश्वविद्यालय का एक छात्र राजीव गोस्वामी ने आत्म-दाह कर लिया था। जोया हसन ने अपनी पुस्तक ''क्नेस्ट फोर पॉवर'' में आंदोलनों और काँग्रेस के वाद की राजनीति के बारे में बताया है कि मंडल आयोग की रिपोर्ट को लागू करने या उसके विरोध में कैसे विभिन्न जातियों ने आंदोलन किया।

घनश्याम शाह (1987) और निकिता सूद (2012) के अध्ययनों ने 1981 और 1985 में हुए आरक्षण के संबंध में गुजरात में हुए आंदोलनों की चर्चा की है। 1981 और 1985 के दौरान गुजरात में आरक्षण उन जातियों के बीच मतभेदों का एक साधन बन गया जिनके आरक्षण से लाभ होने की आशा थी तथा जो आरक्षण के लाभ से वंचित थे। गुजरात में आरक्षण की राजनीति की राजनैतिक पृष्ठभूमि थी। 1972 में इंदिरा गाँधी के नेतृत्व वाली कांग्रेस की

सरकार ने न्यायमूर्ति बक्षी की अध्यक्षता में सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्गों के लोगों की पहचान करने और उन्हें आरक्षण देने के लिये आयोग का गठन किया था।

बक्षी आयोग की नियुक्ति काँग्रेस द्वारा क्षत्रियों को पिछड़ा मानने के वायदे को पूरा करने की दिशा में की गयी थी। क्षत्रियों में विभिन्न जातियाँ जैसे राजपूत, भील, अर्ध-आदिवासी, परिया तथा कोली (कोठारी, 1970) आदि शामिल थीं। वस्तुतः 1961 के दशक में काँग्रेस को विपक्षी दलों ने चुनौती दी थी। 1967 और 1969 के चुनावों में अनेक क्षत्रियों ने जो परंपरागत रूप से काँग्रेस के समर्थक थे, विपक्षी स्वतंत्र पार्टी का समर्थन किया था। इंदिरा गांधी के नेतृत्व वाली काँग्रेस ने क्षत्रियों को 'पिछड़ा वर्ग' के रूप में मान्यता देकर चुनाव जीतने की कोशिश की थी। पिछड़े वर्ग के रूप में मान्यता क्षत्रियों की पुरानी माँग थी जो उन्होंने प्रथम पिछड़े वर्ग के आयोग से पहले 1954-55 में की थी। बक्षी आयोग ने अपनी रिपोर्ट 1976 में प्रस्तुत की और उनकी सिफारिशों को 1978 में जनता पार्टी की सरकार ने स्वीकार किया था जो काँग्रेस के स्थान पर बनी थी। बक्षी आयोग ने 82 जातियों को पिछड़ी जातियों के रूप में पहचान की थी। इनमें से 62 जातियाँ कोलियों के विभिन्न समूहों से थी। इस आयोग की महत्वपूर्ण सिफारिशों में से कुछ इस प्रकार हैं:- 82 पिछड़ी जातियों को मेडिकल एवं इंजनियरिंग कॉलेजों में 10 प्रतिशत आरक्षण दिया जाना चाहिए, तथा राज्य सरकार की नौकरियों में III तथा IV श्रेणियों को 10 प्रतिशत आरक्षण तथा I तथा II श्रेणियों में 5 प्रतिशत नौकरियों को सुरक्षित रखा जाए।

क्योंकि बक्षी आयोग द्वारा पिछड़ों के रूप में पहचानी जाने वाली जातियाँ कोली जाति के उप-समूह अधिक थे, आरक्षण का सबसे अधिक लाभ उनको मिलने की संभावना थीं। गुजरात क्षत्रिय सभा और उच्च जातियों ने बक्षी आयोग में की सिफारिशों का विरोध किया था। बक्षी आयोग ने जिन जातियों को पिछड़ा नहीं माना था, उनकी माँग थी कि उन्हें भी पिछड़ा माना जाये, क्योंकि उनकी आर्थिक स्थिति और सामाजिक स्थिति भी निम्न थी। इसकी प्रतिक्रिया में, काँग्रेस ने 1981 में माधव सिंह सोलंकी की सरकार ने राणे आयोग का गठन किया था ताकि यह पता लगाया जा सके कि अन्य पिछड़े वर्गों में से कोई सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़ी जाति, पिछड़े वर्ग की परिभाषा से बाहर तो नहीं रह गयी। राणे आयोग ने 1983 में अपनी रिपोर्ट पेश की थी। इसने पिछड़े दल की पहचान के मापदंड के रूप में जाति को अस्वीकार कर दिया तथा उसके स्थान पर आर्थिक मानदण्ड या व्यवसाय को अपनाया। इस बीच काँग्रेस के नेताओं के बीच संघर्ष हुआ। विशेषकर माधव सिंह सोलंकी और जीनाभाई दाराजी के बीच। ये दोनों अपनी पकड़ काँग्रेस में करना चाहते थे और पिछड़ों का समर्थन प्राप्त करना चाहते थे। दाराजी से निबटने के लिये माधव सिंह सोलंकी ने राणे आयोग द्वारा सुझाये गये आर्थिक मानदण्ड को दरकिनार करते हुए 1985 में ओ.बी.सी. कोटे को 10 से बढ़ाकर 28 प्रतिशत कर दिया था। ऐसा उन्होंने मार्च 1985 में होने वाले विधान सभा चुनावों से ठीक दो महिने पूर्व ही किया था।

ऐसे राजनीतिक संदर्भ में, अहमदाबाद में, बी.जे. मेडिकल कॉलेज के छात्रों ने मैथोलेजी विभाग में अनुसूचित जातियों के छात्रों के लिये आरक्षित सीटों के खिलाफ आंदोलन शुरू किया था। इस कॉलेज के कुछ विद्यार्थियों ने नवंबर 1979 में गुजरात उच्च न्यायालय में, रोस्टर प्रणाली भार-प्रेशण और आरक्षित सीटों के अदल-बदल के मामले में एक हलफनामा दाखिल किया था। विद्यार्थियों को इस मामले में न्यायालय से पराजय मिली और वो केस हार गये। इसके बाद छात्रों ने अहमदाबाद, बड़ोदरा, जामनगर और सूरत जैसे विभिन्न शहरों में आरक्षण को समाप्त करने की माँग को लेकर आंदोलन शुरू किया था। दलित पेंथर ने इसका उत्तर यह कह कर यदि आरक्षण समाप्त करने की माँग स्वीकार कर ली गयी तो वो भी इसके खिलाफ प्रति-आंदोलन शुरू करेगा। लेकिन राज्य सरकार ने फैसला

किया कि एस.सी. और एस.टी. की सीटों के आरक्षण को औषधि की स्नाकोत्तर अध्ययनों में आगे (कैरी फावर्ड) नहीं ले जाया जाएगा और मुख्यमंत्री ने कहा कि औषधिक के अध्ययन और जैसे शिक्षण में मैरिट में (योग्यता) की पूरी तरह उपेक्षा नहीं की जायेगी। खेड़ा, अहमदाबाद और मेहताणा जिले के कुछ गाँवों में दलित बस्ती को आग लगा दी गयी थी। गुजरात में 1985 में एक और आरक्षण विरोधी आंदोलन हुआ। माधव सिंह सोलंकी सरकार ने 1985 में ओ.बी.सी. के लिए 10 से बढ़ाकर 28 प्रतिशत आरक्षण कर दिया था जो कि राणे आयोग के आर्थिक मानदंड को खारिज करता हैं। पहले के आरक्षण विरोधी आंदोलन की तरह, यह आंदोलन सौराष्ट्र के एक मेडिकल कॉलेज मोरबी कॉलेज से शुरू हुआ था। छात्रों ने हड़ताल करने और कक्षाओं को बहिस्कार करने का सहारा लिया। अहमदाबाद में छात्रों ने गुजरात शिक्षा सुधार शिक्षा समिति का गठन किया जिसने गुजरात बंद की घोषणा की। गुजरात उच्च न्यायालय ने ओ.बी.सी. कोटे में वृद्धि पर रोक का आदेश पारित किया और सरकार ने यह सुझाव देने के लिये एक समिती का गठन किया कि कोटे को बढ़ाया जाये या नहीं। और उसने घोषणा की कि वह जब तक कोटे में वृद्धि नहीं करेगी जब तक कि समिती अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत न कर दे। अंत में आरक्षण विरोधी माँग को स्वीकार कर लिया गया। शाह के अनुसार गुजरात में आरक्षण की राजनीति में उच्च मध्य वर्ग तथा निम्न जाति के मध्यम वर्गों के लोगों के बीच संघर्ष की झलक मिलती थी। आरक्षण को अभिजात राजनीतिक वर्ग के लोगों द्वारा मत प्राप्त करने और उपेक्षित समूहों की आकांक्षाओं को संतुष्ट के लिये लागू किया गया था। आरक्षण ने उच्च जातियों में असुरक्षा की भावना पैदा की। यह भावना उनकी पारंपरिक सामाजिक स्थिति में गिरावट तथा मध्यम वर्ग में निम्न वर्ग के लोगों की भर्ती के कारण तीव्र हो गई थी। आरक्षण विरोधियों को पूंजीपतियों, प्रशासन और मीडिया का भी समर्थन हासिल था। इसी तरह, बिहार में 1978 में कर्पूरी ठाकुर की सरकार द्वारा मुंगेरी लाल आयोग की सिफारिशों को लागू करने के पश्चात् आरक्षण के खिलाफ एवं इसके पक्ष में आंदोलन हुए। कर्पूरी ठाकुर फार्मूला ने अति पिछड़ी जातियों को ओ.बी.सी. कोटे में आरक्षण दिया था।

13.3.2 हिंसा

जाति-आधारित हिंसा का प्रमुख कारण जातिगत भेदभाव होता है। इसमें महिलाओं के साथ शोषण, आर्थिक शोषण, पानी और अंबडेकर जयंती समारोह को लेकर झगड़ा, चुनाव संबंधित हिंसा इत्यादि कारण भी शामिल हैं। भारत के विभिन्न राज्यों में उदाहरण है जहाँ, निम्न जातियां असमान सामाजिक स्थिति और आर्थिक असमानता के कारण जातिय हिंसा की शिकार हो जाती है। ओलिवर मेंडेलासन और मारिका, तथा डाग-इरिक-वर्ग, दलित उत्पीड़न और संवैधानिक लोकतंत्र में बिहार और आंध्रप्रदेश में जातिय हिंसा के बारे में चर्चा करते हैं। 1971 और 1980 के दशकों के उत्तर्रार्ध में बिहार में विभिन्न जाति संगठनों का उद्भव हुआ था। ये अपने आप में जातिगत झगड़ों में फंसे हुए थे जो अक्सर हिंसा पर आधारित होते थे। बिहार में कुर्मी या यादव, तथा दलितों और दलित और उच्च जातियों जैसे भूमिहारों के बीच भूमि के स्वामित्व को लेकर हिंसा होती रहती थी। ऐसे विवादों में से एक विवाद ऐसा था जो कि राष्ट्रीय स्तर पर चर्चित रहा वह था। यह फरवरी 1980 में पटना जिसे के पिपरा गाँव में हुआ था। इस विवाद में दलितों और कुर्मियों के बीच भूमि के स्वामित्व को लेकर झगड़ा हुआ था जिसमें दो दलित परिवारों की हत्या कर दी गई तथा उनकी लाषों एवं घरों को जला दिया गया था। इस घटना से पूर्व पास ही के गाँव में दिसंबर 1979 में दो कुर्मी जमींदारों की हत्या कर दी गई थी। बिहार में कुछ अन्य उदाहरण भी हैं जहाँ दलितों की हत्या जाति हिंसा या जमीन विवाद में कर दी जाती है। जैसे 1977 में बेलची हत्याकांड, 1978 में बिश्रामपुर कांड, 1986 में जहानाबाद में अरवल कांड शामिल हैं।

आंध्रप्रदेश में भी जातिगत हिंसा में दलित शिकार हुए हैं। इसके कुछ उदाहरण इस प्रकार से हैं। 1968 में कृश्णा जिले में कांची-कचरेला गाँव, 1985 में कर्मचेडू गाँव तथा 1991 में गुंटूर जिले का सुंदर गाँव के उदाहरण शामिल हैं। दलित प्रभावशाली जाति के लोगों के शिकार हुए थे। कर्मचेडू घटना के बर्ग (2002) के अनुसार दो कारण है :- दलित समाज का आगे बढ़ना और सत्ता पर भू स्वामियों का कब्जा हो जाना, विशेषकर कामा समुदाया था। कर्मचेडू कांड की जड़े विवाद में हैः 17 जुलाई 1985 को दलित (माडिगा) लड़के ने एक काम्मा लड़के को डाँटा क्योंकि उसने अपनी भैंस को उस तालाब में नहलाया जिससे माडिगा लोग पानी लेते थे। इसके विरोध में काम्मा लड़के ने दलित लड़के को और एक माडिगा बुजुर्ग औरत को पीटा था। इससे प्रतिरोध की आग भड़की और माडिगा निवासियों की बस्ती पर काम्मा जाति के लोगों द्वारा आक्रमण हुआ। दलितों के घरों में आग लगा दी गयी जिसमें छः लोगों की मौत हो गयी थी। कर्मचेडू हत्याकांड ने आंध्रप्रदेश में दलित आंदोलन की गति को प्रभावित किया। और इस हत्याकांड की प्रतिक्रिया के तौर पर आंध्रप्रदेश में दलित महासभा का गठन हुआ। इस घटना का आंध्रप्रदेश में राजनीतिक दलों के लिये भी महत्व था। विपक्षी दल काँग्रेस ने रेखांकित किया कि गाँव के कुछ काम्मा परिवारों का मुख्यमंत्री एवं टी.डी.पी. प्रमुख एन.टी. रामा राव के साथ संबंध था।

12.3.3 जातिवादी प्रतीक एवं राजनीति

जातिवादी प्रतीक, ऐतिहासिक मिथक, जाति चिन्ह जाति लामबंदीकरण के महत्वपूर्ण औजार हैं। इस प्रकार के प्रतीकों को मान्यता देने से इन प्रतीकों से संबंधित जातियों में आत्मविश्वास की भावना पैदा होती है। 1995 से 2012 के बीच विभिन्न समय में उत्तर प्रदेश में मायावती प्रमुख की अगुवाई में आने वाली चार सरकारों ने जाति चिन्हों को महत्व दिया था और उसके दल बी.एस.पी. इन चिन्हों को राजनीति में प्रयोग करने के महत्वपूर्ण उदाहरण है। मायावती सरकार ने उत्तर प्रदेश के अनेक गाँवों को अंबडेकर गाँव की संज्ञा दी थी इन गाँवों में दलितों की संख्या काफी अधिक हैं। उन्होंने गाँवों में दलितों के कल्याण के लिए कई योजनाऐं शुरू की थी। इन गाँवों के विकास तथा वहाँ पर दलित कल्याण के लिए मायावती सरकार ने नीतियां लागू की थी। उनकी सरकार लखनऊ ने अंबडेकर पार्क तथा अनेक स्मारकों का निर्माण किया। इनका नामकरण उपेक्षित जातियों से संबंधित प्रतीकों के आधार पर किया गया था। सरकार ने कई नये जिलों का निर्माण किया तथा पुराने जिलों के नामों को नए नाम दिए।

अभ्यास प्रश्न 1

टिप्पणीः क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से करें।

1) भारत में आरक्षण चुनावी राजनीति का महत्वपूर्ण एजेंडा है? व्याख्या कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) भारत में जाति आधारित हिंसा की प्रकृति क्या है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

12.4 जाति और चुनावी राजनीति

जाति और चुनावी राजनीति एक दूसरे से संबंधित है। इकाई 4 में आपने जाति और चुनावी राजनीति के एक महत्वपूर्ण पहलू के बारे में पढ़ा है। इस उपखंड में आप चुनावी राजनीति में जाति के अन्य पहलुओं के बारे में पढ़ोगे। इन पहलुओं में निर्वाचित प्रतिनिधियों की जातिय पृष्ठभूमि, चुनावी राजनीति में जातियों को लामबंद करने की पार्टी रणनीतियां और राजनीतिक दलों ने समर्थन और जातियों के बीच संबंध। 1950 के दशक से अनेक विद्धानों ने चुनावी राजनीति में जाति की भूमिका का अध्ययन किया है। भारत में चुनाव अध्ययन करने की प्रमुख भूमिका दिल्ली में स्थित सी.एस.डी. एस के नाम से प्रसिद्ध है। अनेक अध्ययनों में यह पाया गया है कि जाति और निर्वाचन राजनीति के बीच संबंध में 1952 से हुए प्रथम आम चुनावों के बाद से भारी परिवर्तन हुए हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के कुछ दशकों तक निर्वाचन राजनीति पर देश के विभिन्न क्षेत्रों में पारंपरिक रूप से प्रभावी जातियों का ही वर्चस्व रहा है।

आधिकारिक दृष्टि से कोई भी व्यक्ति चाहे वह किसी भी जाति हो उसे मत देने का अधिकार तो था लेकिन कई अवसरों पर प्रबल जाति के लोगों ने दूसरी छोटी जातियों को मत देने नहीं देते थे। इसे हम ''बूथ कैप्चरिंग'' के नाम से भी जानते है। 1950 से 1960 के दशकों में देश के अधिकांश भागों में काँग्रेस को अनेक जातियों का समर्थन प्राप्त हुआ था। इसका नेतृत्व भी उच्च या मध्यम वर्ग की जातियों द्वारा किया गया था तथा सामाजिक सोपानक्रम के अनुसार जातियों द्वारा भी चुनावों में इसका समर्थन किया गया था। पॉल आर ब्रास काँग्रेस को जातियों के गठबंधन के आधार वाला दल मानते हैं। लेकिन 1970 से काँग्रेस देश में अपनी वर्चस्वता नहीं रख सकी। 1967 और 1969 में कई राज्यों में काँग्रेस की हार का संकेत मिला। काँग्रेस के पतन के साथ-साथ कई राज्यों में राज्य स्तर के नेताओं का उदय हुआ जिन्होंने राज्य स्तर के दल बनाये और मध्यम जातियों के किसान वर्ग या समुदायों जैसे जाट, यादव या अन्य पिछड़े वर्गों को संगठित किया। उत्तर भारत में इन समूहों का मुख्य नेतृत्व चौधरी चरण सिंह ने किया। गैर कांग्रेसी नेताओं ने आपातकाल के बाद जनता पार्टी का गठन किया था। काँग्रेस सरकारों की तुलना में उत्तर प्रदेश और बिहार में इसकी सरकारों ने पिछड़े और खेतिहर समुदायों को अधिक प्रतिनिधित्व दिया कांग्रेस की सरकारों में उच्च जातियों को अधिक प्रतिनिधित्व दिया था।

टिप्पणी: क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से करें।

1) चुनावी राजनीति में जाति की भूमिका का संक्षिप्त विश्लेषण कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

12.5 सारांश

जाति और राजनीति एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। ये एक दूसरे को प्रभावित करती हैं। जाति की राष्ट्रीय, राज्य एवं स्थानीय चुनावों में भूमिका होती है। राजनीतिक दलों और संगठनों का गठन कई कारकों से होता है, जिनमें जाति के एक प्रमुख कारक होती हैं, खासकर उत्तरी भारत के राजनीतिक दलों में। केवल पार्टी का गठन ही नहीं बल्कि उम्मीदवारों का चयन मुख्य रूप से किसी क्षेत्र के जातिय ढाँचे पर आधारित है। आरक्षण नीति ने निर्वाचन राजनीति में जाति की भूमिका का विस्तार किया है और इसने अनुसूचित जाति और पिछड़े वर्गों की राजनीतिक भागीदारी भी प्रदान की है। आरक्षण से पिछड़े समाज के कई नेताओं की राजनीतिक भागीदारी में और राजनीतिक प्रतिनिधित्व में वृद्धि हुई है। फिर भी जाति आधारित हिंसा का आरक्षण पर सबसे बुरा प्रभाव पड़ा है। राजनीतिक दल एवं नेता इसे वोट प्राप्त करने का एक उपयुक्त साधन मानते हैं। धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र होने के बावजूद जाति भारतीय समाज का अभिन्न हिस्सा है और इसलिये राजनीति में जाति एक महत्वपूर्ण कारक रही है।

12.6 संदर्भ

ब्लेयर, हैरी (1980, ''राइजिंग कुलक्स एण्ड बैकवार्ड क्लासेज इन बिहारः सोशल चेंज इन द् लेट 1970, *ई.पी.डब्लयू.*, जनवरी 12

पॉल, आर, ब्रास (1985), *कास्ट, फेक्शन एन्ड पार्टी इन इडिंयन पोलिटिक्स.* नई-दिल्ली, चाणक्य प्रकाशन।

बर्ग,डाग-ऐरिक (2020), *डायनैमिक्स ऑफ कास्ट एन्ड लॉः दलित, ओप्रेसन एन्ड कंस्टीट्यूशनल डेमोक्रेसी,* कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिजज।

हसन, जोया, (1998), *क्वेस्ट फोर पॉवरः अपोजीशनल एजीटेशन एन्ड पोस्ट-कॉंग्रेस पोलिटिक्स इन उत्तर-प्रदेश,* आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली।

जैफरलो, क्रिस्टोफ (2019), क्लास एन्ड कास्ट इन द 2019 इंडियन इलैक्षन - व्हाई हैव सो मैनी पुअर स्टार्टेड वोटिंग फोर मोदी, *स्टडीज इन इंडियन पोलिटिक्स,* 7 (2) : 149-160।

जैफरलो क्रिस्टोफ एन्ड संजय कुमार (2009), *राइज ऑफ प्लेबियंस? द चेंजिंग फेस ऑफ इंडियन लेजिसलेटिव असैंबलिज.* न्यू-दिल्ली, राउटलेज।

जेफरलो क्रिस्टोफ (2003), *इंडियाज साइलैंट रिवेल्यूशनः द राइज ऑफ लो कास्टस इन नार्थ इंडियन पोलिटिक्स,* दिल्ली।

कोठारी, रजनी (1970), *कास्ट इन इंडियन पोलिटिक्स.* न्यू दिल्ली, ओरियंट लोंगमैन लिमिटेड।

मेंडलसोन, ओलिवर एन्ड विकजिनी (1998), *द अटंपेबिल्सः सबोर्डिनेशन, पोवर्टी एन्ड द स्टेट इन मॉडर्न इंडिया,* कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यू-दिल्ली।

पाई, सुधा (2002) *दलित असर्सन एन्ड द अनफिनिश्ड डेमोक्रेटिक रिवोल्यूशनः द बहुजन समाज पार्टी इन उत्तर प्रदेश,* सेज प्रकाशन, नई-दिल्ली।

शाह, घनस्याम, (1785), 'कास्ट, क्लास एन्ड रिजर्बेशन': ई.पी.डब्ल्यू, वोल्यूम-2, न.3।

शाह, घनस्याम, (1987), मिडिल क्लास पोलिटिक्स, ए केस ऑफ एंटी-रिजर्वेशन एजीटेशन इन गुजरात, ई.पी.डब्ल्यू., वार्षिक नंबर।

सूद, निकिता (2012), *लिबरेलाइजेशन, हिन्दू नेशनेलिज्म एन्ड द स्टेटः एं बायोग्राफी ऑफ गुजरात,* आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यू-दिल्ली।

12.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1) जाति राजनीति एवं आरक्षण का संबंध - सभी जातियों की आर्थिक, राजनीतिक एवं सामाजिक स्थिति भिन्न-भिन्न है, भारत में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, एवं ओ.बी.सी. वर्गों के लिये आरक्षण का प्रावधान किया गया है। इसमें सार्वजनिक शैक्षिक संस्थानों में नौकरियों, प्रवेश के लिये आरक्षण का प्रावधान किया गया है तथा विधायी निकायों में भी आरक्षण का प्रावधान किया गया है। आक्षण भारतीय राजनीति में एक विवादास्पद मुद्दा रहा है। जिन जातियों को आरक्षण नहीं दिया गया है वो जाति आधारित आरक्षण को खत्म करने की बात करती हैं और योग्यता के आधार पर आरक्षण दिये जाने की बात करती हैं। जो लोग आरक्षण का समर्थक करते है, उनका मानना है कि योग्यता सामाजिक, आर्थिक यथार्थ पर आधारित है और इसलिये हासिये के वर्गों को सामाजिक न्याय प्रदान करने के लिये आरक्षण की बेहद सख्त जरूरत है।

2) जाति आधारित हिंसा का संबंध जाति आधारित भेदभाव से है, जिसमें महिलाओं का शोषण, आर्थिक शोषण, जल विवाद, तथा अंबेडकर जयंती समारोह पर विवाद एवं चुनावी हिंसा शामिल है। कुछ राज्यों में निम्न जातियों के लोगों को सामाजिक एवं आर्थिक असमानता का शिकार पाया जाता है। जाति आधारित हिंसा में दलितों पर शारीरिक हमले किये जाते हैं।

अभ्यास प्रश्न 2

1) जाति एवं चुनावी राजनीति एक दूसरे से जुड़ी हुई है। राजनीतिक दल विभिन्न जातियों को लामबंद करके के लिए रणनीतियां बनाती है। वे मुद्दों को उठाती है, विशेषकर उनके लोगों को चुनाव में टिकिट देकर ताकि वे उनका समर्थन प्राप्त कर सके। बहुजन समाज पार्टी (बी.एस.पी.) एवं समाजवादी पार्टी (एस.पी.) प्रमुख रूप से दलित एवं पिछड़े वर्गों की पार्टियां है। लेकिन किसी भी पार्टी के प्रत्याशी को जीतने के लिये विभिन्न जातियों के गठबंधन की जरूरत पड़ती है।